रामकथा का लौकिक सौंदर्य

डॉ. राजेश श्रीवास्तव

रामकथा का लौकिक सौंदर्य पक्ष अद्भुत है। यहाँ लोक की नाटकीयता भी असाधारण है और उसकी कथा के सौंदर्यबोध का प्रस्तुतिकरण भी। रामकथा एक लीला है। नाटकीयता से भरपूर। लोक को इस नाटकीयता में ही रस मिलता है और उसका सौंदर्य भी इसमें ही उभरकर आता है।

इतिहास घटनाओं और व्यक्तियों के बाद लिखा जाता है। किंतु नाटक पहले लिखा जाकर बाद में खेला जाता है। वाल्मीकि रामायण भी एक नाटक है जिसे पहले लिखा गया और बाद में उसे राम ने आकर मूर्त रुप दिया। वाल्मीकि को मालूम था कि उनका रामायणग्रंथ कवियों के लिए आधारग्रंथ सिद्ध होगा - परम कवीनामाधारम् (1/4/27)

तुलसीदास ने आरंभ में ही कह दिया था कि वे राम की लीला का चित्रण कर रहे हैं। लीला अर्थात खेल। इस चरित को लीला ही समझा जाए। मानस में राम कथा की भूमिका के लिए सर्वाधिक महत्व का प्रसंग शिव-पार्वती संवाद है। पार्वती को अपने पूर्व जन्म का वृतांत स्मरण हो आता है और वे शिवजी से प्रश्न करती हैं। निर्गुण ब्रह्म क्यों सगुण रुप धारण करता है ? राज्य का संचालन करने हेतु राम ने कौन कौन सी लीलाएं की ?

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा।
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला।।

शिवजी भी प्रसन्नता से पार्वती को राम की लीला के बारे में बताते हैं।

गिरिजा सुनहुँ राम कै लीला। सुरहित दनुज बिमोहन सीला।।

राम को कौतुक निधि कहते हुए भी तात्पर्य यही है कि राम कौतुक अर्थात लीला ही कर रहे हैं। रामचरित का अर्थ भी राम की लीला ही है। शिवजी तो इस लीला को देखने को इतने आतुर हैं कि वे राम से हाथ जोड़कर कहते हैं -

नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित तुम्हार।। (115)

यह कौन-सा चरित है, जिसे देखने आने की बात शिवजी कह रहे हैं? यह वही चरित्र है, जिसमें राम के राजतिलक के साथ लोकाचारों के विभिन्न रंग विद्यमान होंगे। शिवजी को श्रीराम की लीलाओं का यही लोक-चरित देखना है। इसके सौंदर्य का साक्षी बनना है।

नाटक और लीला

नाटक और लीला में अंतर है। नाटक बाह्यभाव है। किसी अन्य पात्र का अभिनय करना नाटक है। किंतु लीला अन्तरभाव है। स्वयं अपने ही भाव का रुपान्तर करना और उसी में विभिन्न क्रीड़ा करना। लीला केवल अवतारी पुरुष के लिए ही संभव है। इसलिए लीलापुरुष का अभिनय करने वाला भी पूज्य ही माना जाता है और नाट्य लीला करते समय उसमें अवतार के दर्शन होते हैं। इसी भाव से राम की लीला का आरंभ होता है। माता कौशल्या को वे बता देते हैं कि वे मायागुनज्ञानातीत हैं। दशरथ भी जानते हैं कि राम लीला ही कर रहे हैं। राम को जन्मते ही लीला करने के लिए पुकारा जा रहा है।

माता पुनिबोली सो मति डोली तजहुँ तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।

लीला का ही परिणाम है कि वे अनेक दुर्लभ एवं कठिन कार्यों को एक बार में और या फिर केवल इच्छामात्र से ही कर लेते हैं। उसके लिए उन्हें न तो कोई यत्न करना होता है और न ही कोई विचार। शिव का धनुष वे अनायास ही उठा लेते हैं और कमल नाल की तरह खण्ड खण्ड कर देते हैं। विराध, कबंध, बाली का वे एक ही वाण से वध कर देते हैं। रावण से भी वे युद्ध नहीं करते बल्कि खेल ही खेलते हैं।

राम का सम्पूर्ण चरित एक विशाल क्रीड़ा एवं विराट अभिनय है। उनकी न किसी से शत्रुता है और न किसी से मित्रता। रावण का वध शत्रुता के लिए नहीं, लोकोद्धार के लिए है।

लीला का फलक विस्तृत है। इसमें राम अकेले लीलापुरुष नहीं हैं। पषुपक्षी ,देवता , वानर, राक्षस आदि भी हैं, इसी में सीता भी हैं। लक्ष्मण, भरत, दषरथ, रावण, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, मेघनाद, अंगद, सीता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मंथरा, शूर्पणखा, शबरी, मंदोदरी, तारा सभी इस लीला के प्रमुख पात्र हैं।

रावण विजय के पष्चात अयोध्या लौटते समय वानर मित्र राम के साथ ही हैं। राम के राज्याभिषेक के समय वे सभी वानर मनुष्य रुप धारण कर लेते हैं।

लंकापति कपीस नल नीला , जामवंत अंगद सुभसीला।

हनुमदादि सब बानर बीरा , धरे मनोहर मनुज शरीरा।। (उत्तरकाण्ड)

यह भी तो लीला ही है जहाँ नारदजी का लक्ष्मी पर मोहित होने वाला प्रसंग रचा गया है।

संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।

भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान।। (127)

वशिष्ठ संहिता में लिखा है -

रामस्य नामरुपं च लीलाधाम परात्परम्

एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानंदमध्ययम्।

श्रीराम का नाम, रुप, लीला और धाम ये चारों ही परम सत्य, दिव्य ब्रहमस्वरुप अप्राकृत, नित्य सच्चिदानंद अव्यय सदा एक समान रहने वाले हैं।

हरिवंशपुराण के विष्णुपर्व (93/6/33) में यदुवंशियों द्वारा वाल्मीकि रामायण के नाटक खेलने का उल्लेख किया गया है। श्रीहरि ने माया का आश्रय लेकर प्रद्युम्न को नट बनाकर भेजा था। यादवों को रामलीला नाटक का अभिनय कराने का विस्तृत वणन हरिवंषपुराण के विष्णुपर्व में मिलता है।

वैशम्पायन कहते हैं - भद्र नामक नट ने सूपुरवासी असुरों के आतिथ्य में रामायण महाकाव्य की कथावस्तु लेकर एक नाटक किया। उसमें यह दिखाया गया है कि राक्षसराज रावण के वध की इच्छा से विष्णु का भूतल पर अवतार हुआ। लोमपाद ने महामुनि ऋष्यश्रृंग को गणिकाओं के साथ अपने यहाँ बुलवाया फिर राजा दषरथ ने ऋष्यश्रृंग के साथ उनकी पत्नी शान्ता को भी आमंत्रित किया। राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न ऋष्यश्रृंग और शान्ता का वेष उन्हीं के रुप वाले नटों ने धारण किया था। जो राम के समय जीवित थे वे बूढ़े दानव भी उन्हें देखकर आष्चर्यचकित हो गए और कहने लगे - इनका रुप तो ठीक उन्हीं व्यक्तियों के तुल्य है।

वाल्मीकि के पौलत्स्यवध को नाटक माना जाता है। वाल्मीकि रामायण के प्रथम चार सर्गों से पता चलता है कि किसी अन्य कवि ने भूमिका के रुप में इन सर्गों का प्रणयन किया है। प्रथमसर्ग में रामायण कथा का संक्षिप्त सार है जिसे कई विद्वानों ने स्वतंत्र मूल रामायण के रुप में स्वीकारा है। दूसरे से चौथे सर्ग आदिकाव्य की भूमिकात्मक हैं। मूल कथा तो पॉचवे सर्ग से आरंभ होती है।

प्रथम चार सर्गों में बताया गया है कि इस रामायण के कवि वाल्मीकि हैं। इसीलिए इसका नाम वाल्मीकि रामायण पड़ा। प्रथम श्लोक में ही कोई कवि अपने ही काव्य की भूमिका इस तरह प्रस्तुत न करेगा -

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वीवाग्विदां वरम्।

नारदं परिपप्रच्छवाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्।।

और चौथे सर्ग का प्रथम श्लोक है -

प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानऋषि।

चकार चरितं कृतस्नं विचित्रपदमात्ववान्।।

इस श्लोक में भगवान और आत्मवान जैसे शब्दों का प्रयोग वाल्मीकि ने स्वयं के लिए तो कदापि न किया होगा। आगे वे लिखते हैं -

काव्यं रामायणंकृतस्नं सीतायाष्चरितं महत्। पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः।।

(महर्षि वाल्मीकि ने सीता राम के सम्पूर्ण चरित रावणवध के वृतांत सहित इस काव्य का नाम पौलस्त्यवध रखा। रावण का जन्म पौलस्त्य ऋषि के वंष में हुआ था अतः रावण को पौलस्त्य भी कहते हैं। पौलस्त्यवध अर्थात रावण का वध जिसमें वर्णित किया गया वह पौलत्स्यवध कहलाया।)

अन्त में वे पुनः स्मरण कराते हैं कि इस रामायण के वास्तविक कवि वाल्मीकि ही हैं।

आदिकाव्यमिदं चार्षम, पुरा वाल्मीकिना कृत।

इस संभावना की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि वाल्मीक और वाल्मीकि दो भिन्न कवि रहे हों। वाल्मीक ने पौलत्स्यवध लिखा हो और उसके बाद वाल्मीकि ने रामायण।

वाल्मीकि ने इस आदिकाव्य की रचना अति-प्राचीनकाल में की है। राम के चरित का वर्णन होने के कारण इसे रामायण कहा गया। रामस्य अयनम् चरितम् रामायणम्। आगे चलकर राम के चरित्र का वर्णन करने वाले सभी काव्य रामायण कहलाने लगे। काव्यषास्त्र के अनुसार फलश्रुति काव्य के अंत में ही लिखी जाती है। रामायण की फलश्रुति युद्धकाण्ड में ही हो जाती है। इसलिए उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त तथा बाद में किसी अन्य कवि द्वारा लिखा हुआ माना जाता है।

वनगमन का सौंदर्य-पक्ष

रामकथा का सर्वोत्तम मांगलिक प्रसंग वनगमन है। वही रामकथा का वास्तविक सौंदर्य भी है और उसमें ही लोक का सौदर्य भी अपने प्रकर्ष पर उभरकर आता है।

वन का अर्थ एकांत नहीं होता, निर्जन नहीं होता। अनेक प्रकार के पंछी-पखेरु अपने कलरव से वन को सदैव गुंजायमान रखते हैं। सरित कलकल, मेघगर्जन, पर्वतरोर, वृक्षनर्तन वन को जीवन प्रदान करते हैं। निर्जन तो जंगल होता है। जहाँ सब जड़ होता हो, जहाँ पशु प्रवृत्ति प्रभावी होती हो, वहीं तो जंगल हैं। वन जीवंत होता है। वन में जड़-चेतन का समन्वय होता है। पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, पर्वत इन सबके बीच प्रकृति का सम्पूर्ण सहचर्य, वन को ग्रहण करने, आत्मसात करने की सुध निराली है। हमारे जीवन की दशा भी कुछ ऐसी ही है। आनंद और प्रसन्नता स्वयं के भीतर ही है। यहॉ दूसरों का मूल्यांकन करने वाला सदैव दुखी ही रहता है। प्रसन्नता का सूत्र आत्ममूल्यांकन में ही मिलता है। आनंद को बाहर से प्रभावित करने वाले कारकों का संयोजन ही जीवन की शक्ति है।

संसार में छोटा बड़ा कुछ भी नहीं होता। छोटे-छोटे का संचय ही बड़ा होता है। पल-प्रतिपल के आनंद का संचय, समन्वय और संयोजन ही परम आनंद है। राम तो स्वयं परमानंद स्वरुप है। राम का वनगमन अर्जित शिक्षा को व्यवहार में लाने का समय है।

कैकेयी को मंथरा ने उकसाया अवश्य था किन्तु वह तो उस दासी का धर्म ही था। अपनी स्वामिनी को सर्वोपरि देखना और उसके हित साधना - इसमें अनुचित क्या है ? कौशल्या और सुमित्रा के प्रति उसकी संवेदनाओं की सीमा स्वाभाविक है। स्वामिनी कैकेयी को पटरानी के रुप में देखने की इच्छा तो पूर्ण न हो

सकी किन्तु उसे राजमाता के रुप में स्थापित करने में वह कुछ योगदान तो दे सकती है। उसे पूर्ण विश्वास है कि तनिक भी विवेक से काम लिया जाए तो भरत को अयोध्या का राजा बनाया जा सकता है। इस विवेक में थोड़ी चतुराई और थोड़ी कूटनीति आवश्यक है - वह इसी दिशा में तो कार्य कर रही है ...

कैकेयी को मंथरा की बात एकदम जँच कैसे गई ? यह विचारणीय प्रश्न है। कुछ न कुछ तो उसके मन में पहले से भी चल रहा होगा। राम को वनवास भेजने का उद्देश्य भरत को गद्दी देने की इच्छा मात्र नहीं हो सकता। दशरथ को यह अंदेशा तो था ही कि कैकेयी को दिये वरदान और उसके पिता को दिया वचन अभी प्रासंगिक है। कैकेयी पुत्र को ही राजा बनाया जाएगा यह वचन उन्होंने उस स्थिति में दिया था जब वे संतान प्राप्ति की समस्त संभावनाओं के प्रति निराश हो चले थे। किंतु अब स्थितियां बदल चुकी हैं। दशरथ ने राम का अभिषेक तुरंत करने का विचार बनाया ।

मंथरा ने कैकेयी को अपने सामर्थ्य भर उकसाने का प्रयास किया था। इतनी तैयारी चल रही है पखवाड़े से और तुम्हें तनिक भी संज्ञान नहीं। -

भयउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाइ सुधि मोहि सन आजू।।

मंथरा पूर्वजन्म में दुंदुभि नामक एक गंधर्व कन्या थी। उसके अवचेतन में भविष्य की दृष्टि भी वास करती है। उसकी योजना का प्रबल पक्ष भरत को राजा बनाना नहीं हो सकता। राम के वनवास में उसकी अधिक रुचि है। उसने कैकेयी को स्पष्ट रुप से कहा -

सुतहिं राजु, रामहिं वनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।

और कैकेयी ने भी तो वर किस तरह मॉगे -

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥

उसे ज्ञात था भरत को राज्य देने में राजा दशरथ को तनिक भी संकोच नहीं होगा। किन्तु दूसरे वर के बारे में संशय था -

मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

हाथ जोड़कर विनती करती हूॅ कि मेरे इस मनोरथ को पूर्ण कर दीजिए।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरस राम वनवासी।।

राम को यह वनकाल तपस्वी के वेष में बिताना होगा और वह भी विशेष उदास भाव से।

कैकेयी अपनी जय चाहती है। वह राम के मुख उदासी देखना चाहती है। उदासी भी सामान्य नहीं विशेष उदासी। इस विशेष उदासी के अर्थ को कौन जानता है। कैकेयी जानती होगी या राम। तभी तो राम मुस्कुरा पड़ते हैं। राम का तो मूल स्वभाव ही प्रसन्नता है। वास्तव में राम पाँच देवताओं के स्वरुपों, अंशों और गुणों को धारण किए हुए हैं - अग्नि का प्रताप, इन्द्र का पराक्रम, सोम की सौम्यता, यम का दंड और वरुण

की प्रसन्नता। वन में मुनियों और ऋषियों का सत्संग मिलेगा, यह विचार ही राम को स्फूर्ति से भर देता है -

मुनिगन मिलनु विसेस वन सबहिं भाँति हित मोर।।

वनगमन की सूचना मिलने पर भी राम प्रसन्न हैं। वनगमन कोई दंड नहीं है। माता कौशल्या से भी वे चहककर कहते हैं -

जहँ सब भाँति मोर बड़काजू। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।।

कैकेया ने जो दो वर मांगे उनकी भाषा और अर्थ विचित्र थे। 'यह जो राम के लिए राज्याभिषेक की तैयारी की गई है, इसी अभिषेक सामग्री द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक किया जाए। और दूसरा - धीर स्वभाव वाले श्रीराम तपस्वी वेष में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षों तक दण्डकारण्य में जाकर रहें। भरत को आज ही निष्कंटक युवराज पद प्राप्त हो जाए। आज ही मैं राम को वन की ओर जाते हुए देखूँ। ' वाल्मीकि की कैकेयी बहुत हठी और निष्ठुर है। वह कहती है - धर्म की अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए तथा मेरी प्रेरणा से आप अपने पुत्र श्रीराम को घर से निकाल दीजिए। मैं अपने इस कथन को तीन बार दुहराती हूँ।

प्रव्राजय सुतं रामं त्रिः खलु त्वां ब्रवीम्यहम्।।

इस प्रसंग में लोक के लिए एक ऊँचे आदर्श की स्थापना तो है ही, किंतु, बातों के कहने का जो ढंग प्रकट हुआ है, उसका सौंदर्य भी कम रोचक नहीं है। ध्यान दें तो तुलसीदास की कैकेयी के वर माँगने में हठ भी कौशल के साथ आया है। पहले रूठकर, फिर दाता यानी दशरथ को पूरी तरह से वचन में कसकर कैकेयी ने वर माँगे हैं। संवाद की यह कला लोक के पात्रों में भी खूब देखी जा सकती है।

राम को वल्कल वेष धारण करने का आदेश हुआ है। तापसी वेश। तापस का धर्म अपरिग्रह है। संग्रह से मुक्ति। तापस वेश धारण करने से पूर्व राम को अयोध्या से प्राप्त व्यक्तिगत सम्पत्ति को त्यागना होगा। वे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को ब्राहमणों, दास-दासियों तथा याचकों में वितरित करते हैं। गुरु वशिष्ठ के पुत्र सुयज्ञ को वे अपने स्वर्णकुंडल, बाजूबंद, कड़े, मालाएं तथा रत्नजड़ित आभूषण दान करते हैं। स्वर्णजड़ित पलंग भी अब उनके किस काम का। वे सुयज्ञ की पत्नी को सीता के कंगन, मुक्तमाला, किंकणी, हीरे-मोती तथा रत्नादि दे देते हैं। सेवकों को बहुत सा धन देकर अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति दीन-दरिद्रों में बाँट देते हैं। तपस्वी त्रिजटा नामक ब्राहमण को वे अपनी समस्त गाय भेंट कर देते हैं। तत्पश्चात् माता कैकेयी द्वारा दिये गए तापसी वस्त्रों को धारण कर लेते हैं -

मुनि पट भूसन भाजन आए। राम तुरत मुनि भेस बनाए।।

लक्ष्मण और सीता का वनगमन स्वेच्छा से है। सीता को लगभग डराते हुए राम कहते हैं -

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट वेस विधि कोटिक करहीं।।
ब्याल कराल विहग वन घेरा। निसिचर निकर नारि नर चेरा।।
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएं।।

इस संवाद में भी एक प्रकार का लौकिक सौंदर्य उभरकर आया है। आज भी घर से कहीं दूर जा रहे पति से पत्नी जब साथ चलने का हठ करती है, तो वे बाहरी जीवन के संघर्षों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते ही हैं।

किन्तु, त्रेता में वनगमन के प्रयोजन में सीता की भूमिका और सहभागिता राम से कमतर नहीं है। पतिधर्म को सर्वोपरि रखकर सीता का यह कथन दृष्टव्य है -

तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोकु समाजू।।
जिय बिन देह नदी बिनु बारी। तैसेउ नाथ पुरुष बिनु नारी।।

लक्ष्मण के लिए भी राम ही सर्वोपरि हैं -

गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

राम का वनगमन एक अद्भुत घटना थी। और एकदम अचानक हुई। जैसे कोई कहे कि कल से तुम साधु हो जाओ। युगान्तरकारी घटनाएं अचानक ही हुआ करती हैं और युगपुरुष उसे सदैव समभाव से ग्रहण करते हैं। राम के वनगमन का दृष्य ठीक इसी प्रकार का रहा होगा, इसमें संदेह किया जा सकता है किन्तु इस कथा के साथ जुड़ी रामराज्य की अवधारणा पर कोई संदेह न होगा। अनेक युगों से मानव मन का संवर्धन करती आई रामकथा के साथ हमारा जीवन सम्पृक्त है। वही हमारी संस्कृति का आधार है। राक्षसी प्रवृत्ति को ठीक समझने, ऋषियों के आचार-व्यवहार और सत्संग का ज्ञान भी राम के वनगमन के कारण ही संभव हो सका है। और राम के वनगमन की सबसे बड़ी उपलब्धि हनुमान की प्राप्ति है।

. राजेश श्रीवास्तव

निदेशक रामायण केन्द्र भोपाल

मुख्य कार्यपालन अधिकारी

तीर्थस्थान एवं मेला प्राधिकरण

म.प्र.शासन भोपाल